अपनों के बीच में पराए हो जाने की पीड़ा की मार्मिक अभिव्यंजना- 'वापसी' कहानी

डॉ. प्रमोद पडवळ
सहयोगी प्राध्यापक,हिंदी विभाग
चांदमल ताराचंद बोरा महाविद्यालय, शिरूर, जिला-पुणे (महाराष्ट्र) मो. 9767916364

सार- नई कहानी की प्रमुख हस्ताक्षर उषा प्रियवंदा की कहानी 'वापसी' हिंदी की चर्चित कहानियों में से एक है। यह कहानी संयुक्त परिवार के विघटन की कहानी कहती है। 'परिवार' भारतीय समाज व्यवस्था की बुनियाद है। 'वापसी' इस बुनियाद के हिलने की कहानी है। इसमें एक व्यक्ति के रिटायर होकर घर लौटने और पुनः घर छोडकर जाने की कहानी के माध्यम से पारिवारिक संबंधों की खोखली भावात्मकता को बड़ी मार्मिकता से उषा प्रियवंदा ने प्रस्तुत किया है। रिश्ते-नातों से परिपूर्ण होते हुए भी व्यक्ति के बेबस और अकेले होने तथा अपनों के बीच में ही पराए हो जाने की वेदना का अहसास यह कहानी दिलाती है। गजाधर बाबू स्टेशन मास्टर की नौकरी से सेवामुक्त होने के बाद परिवार के बीच रहने के सपने संजोए हुए घर लौटते तो हैं, मगर घर आने के बाद उनके सारे सपने टूट जाते हैं। पत्नी तथा अपनी संतानों के साथ रहते हुए वे अपने ही घर में अजनबी बन जाते हैं। अपनों के बीच में पराए हो जाने की पीड़ा से व्यथित होकर उन्हें वापसी का निर्णय लेना पड़ता है। सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से यह कहानी आज भी प्रासंगिक है।

बीज शब्द- पारिवारिक मूल्य, प्रेम, स्नेह की आकांक्षा, आत्मीयता, घर-गृहस्थी, संवेदना, दखलंदाजी, धनोपार्जन, आत्मसम्मान, अहमियत, स्वाभिमान, जीवन का केंद्र, वापसी, संयुक्त परिवार प्रणाली, बूढ़े-बुजुर्ग, घरस्वामी, आधुनिकता, त्याग, समर्पण, सेवा, योगदान, पारिवारिक सौहार्द।

प्रस्तावना- उषा प्रियंवदा नई कहानीकारों की पंक्ति में विशिष्ट स्थान रखती हैं। 24 दिसंबर, 1930 को कानपुर में इनका जन्म हुआ। साठोत्तर दौर की एक यथार्थवादी कथाकार के रूप में हिंदी की महिला कथाकारों में उषा प्रियंवदा की अपनी अलग पहचान है। आधुनिक जीवन की छटपटाहट, संत्रास, अकेलेपन की स्थिति आदि का सजीव चित्रण उनके कथा साहित्य में दिखाई देता है। उनके 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'रूकोगी नहीं राधिका', 'शेषयात्रा', 'अंतर्वशी' जैसे उपन्यासों तथा 'फिर वसंत आया', 'जिंदगी और गुलाब के फूल', 'कितना बड़ा झूठ', 'कोई एक दूसरा' 'वनवास' जैसे कहानी संग्रहों से इसकी प्रतीति आती है। उषा प्रियंवदा के कथासाहित्य का दायरा काफी व्यापक है। भारतीय और विदेशी परिवेश के अनुभवों के साथ नारी मन की विभिन्न छवियों का बड़ी ही मार्मिकता से प्रस्तुति उनकी विशेषता है। साठोत्तर युग की नारी का संघर्ष, उसकी बेचैनी, घुटन उनके कथासाहित्य का केंद्रबिंदु है। हिंदी की नई कहानी धारा को समृद्ध करनेवाली लेखिकाओं में उषा प्रियंवदा का नाम आदर पूर्वक लिया जाता है। आजादी के बाद उत्तरोत्तर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से महानगरीय जीवन में हो रहे बदलाव को उन्होंने अपनी कहानियों का विषय बनाया, चूँकि आधुनिकता का सर्वाधिक प्रभाव नगरीय जीवन पर पड़ा। आधुनिकता के कारण परंपरागत रूढ़ी-मान्यताओं में बदलाव आया। पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक मूल्यों में बदलाव आया। इन सबकी अनुगूँज उषा प्रियंवदा की कहानियों में दिखाई देती है। इंद्रनाथ मदान के शब्दों में कहा जाए तो- "उषा प्रियंवदा की कहानी-कला से रूढ़ियों, मृत परंपराओं, जड़ मान्यताओं पर मीठी-मीठी चोटों की ध्वनि निकलती है, घिरे हुए जीवन की उबासी एवं उदासी उभरती है, आत्मीयता और करुणा के स्वर फूटते हैं"[1]

आधुनिक जीवनशैली, समाज व्यवस्था और व्यक्ति, आधुनिकता के कारण उपजी स्थितियाँ और उससे जूझता समाज, रूढ़ी परंपरा और नई जीवनशैली के द्वंद्व में फंसी स्त्री, अपने स्वत्व की पहचान, स्वाभिमान हेतु संघर्ष करती स्त्री आदि का चित्रण उषा प्रियंवदा ने अच्छी तरीके से अपने कथा साहित्य में किया है। उषा प्रियंवदा नई कहानी की एक प्रमुख कथाकार रही है। 'नई कहानी' आंदोलन से हिंदी कहानी क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए। कहानी के रूप गठन से लेकर उद्देश्य तक अनेक बदलाव इसमें हुए। कमलेश्वर के ये उद्गार इस संदर्भ में सार्थक लगते हैं कि "नई कहानी में तलाश पात्रों की नहीं, यथार्थ की है, पात्रों के माध्यम से यथार्थ की अभिव्यक्ति की। पहले कहानी कला-मूल्यों को लेकर लिखी जाती थी, अब जीवन-मूल्यों को लेकर, पहले कहानी झूठी थी, अब सच्ची है।"[2] एक तरीके से इस दौर में कहानी पारंपरिकता से आधुनिक बनी। हालाँकि यह समय की दरकार भी थी, क्योंकि साठोत्तरी दौर में भारतीय समाज काफी तेजी से बदलता गया। सामाजिक ढाँचे में आए इस बदलाव को उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी न केवल प्रस्तुत करती है, बल्कि मन को द्रवित करते हुए सोचने पर मजबूर भी करती है। यह कहानी न केवल उषा प्रियंवदा की लोकप्रिय कहानी है, बल्कि हिंदी कहानी विधा की सबसे चर्चित कहानियों में से है।

विषयवस्तु- 'वापसी' नई कहानी की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है, जो सन 1960 में 'नई कहानियाँ' में प्रकाशित हुई। उषा प्रियंवदा ने मध्यमवर्गीय परिवार की मानसिकता का वास्तविक चित्रण करते हुए विघटित हो रहे पारिवारिक मूल्यों को इसमें बखूबी अभिव्यक्त किया है। भारतीय समाज व्यवस्था में रिश्तों एवं संबंधों का महत्वपूर्ण स्थान है। यूँ कह सकते हैं कि भारतीय समाज व्यवस्था की यह नींव है। 'वापसी' इस नींव के हिलने की कहानी है। "भारतीय पारिवारिक व्यवस्था में संबंधों की भावात्मकता पर कभी प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया गया, न ही बदलते परिवेश में चरमराते जीवनमूल्यों को खुले मन से स्वीकार किया गया। यह कहानी इन दोनों स्थितियों पर एक साथ 'फोकस' करती है।"[3] वह संबंधों की भावात्मकता के खोखलेपन को उद्घाटित करती है। रिश्ते-नातों से परिपूर्ण होते हुए भी व्यक्ति के असहाय और अकेले होने तथा अपनों के बीच में ही पराए हो जाने की पीड़ा को यह कहानी महसूस कराती है। इतना ही नहीं तो भारतीय समाज व्यवस्था में पारिवारिक मूल्यों के परिवर्तन को बड़ी मार्मिकता से अभिव्यक्त भी करती है।

'वापसी' गजाधर बाबू की कहानी है, जो पैंतीस साल स्टेशन मास्टर की नौकरी करने के बाद सेवानिवृत्त होकर अपनों के बीच रहने के सपने संजोए हुए घर लौटते हैं। गजाधर बाबू ने जीवन का अधिकांश समय अकेले ही काटा था। संसार की दृष्टि से उनका जीवन एक सफल जीवन माना जा सकता है, क्योंकि शहर में उनका एक मकान था, दो बच्चों की शादी करा दी थी और दो बच्चे ऊँची कक्षाओं में पढ़ रहे थे। रेलवे क्वार्टर में रहकर नौकरी करते हुए गजाधर बाबू को पैंतीस सालों तक परिवार से दूर रहना पड़ा था, चूँकि नौकरी के कारण गजाधार बाबू को अलग-अलग स्टेशनों में रहना पड़ता था जिससे बच्चों की शिक्षा में बाधा पहुँच सकती थी। इसलिए उन्होंने बीवी और बच्चों को शहर में रखा था और खुद रेलवे क्वार्टर में अकेले रहते थे। रेलवे क्वार्टर

छोड़ते समय वे विषाद का अनुभव करते हैं, पर पत्नी, बाल-बच्चों के साथ रहने की कल्पना में यह बिछड़ने का दुख गायब हो जाता है। रिटायरमेंट के बाद उन्होंने सोचा कि अब जिंदगी के बचे दिन अपने परिवार के साथ प्यार और आराम से बिताएंगे।

पारिवारिक प्रेम, स्नेह के लिए तरसे गजाधर बाबू वर्षों बाद इसी अपेक्षा से घर में कदम रखते हैं, पर उनके सपनों को घर में आते ही ठेस पहुँचती है। उनके आने से बच्चे असहज महसूस करते हैं। उनके आने की खुशी न बच्चों में दिखाई देती है, न उनकी पत्नी में। बच्चों के मनोविनोद में भाग लेने की गजाधर बाबू की इच्छा होते हुए भी बच्चों के असहज व्यवहार से वे निराश होते हैं। वह देखते हैं कि परिवार के लोग अपने-अपने ढंग से जी रहे हैं। बेटा घर का मालिक बना हुआ है। बेटी और बहू घर का कोई काम नहीं करती। रसोई की सारी जिम्मेदारी पत्नी के ऊपर है। घर के बाकी कामों के लिए नौकर रखा गया है। बच्चों और पत्नी के रोजमर्रा के दिनक्रम में अपने ही घर में गजाधर बाबू को जगह ढूँढना मुश्किल हो जाता है। अधिक दुख तो उन्हें तब होता है जब उनकी पत्नी उनकी अपेक्षा घर-गृहस्थी को वरीयता देकर उसे ही जीवन का केंद्र मानती है।

घर के रवैये में सुधार हेतु गजाधर बाबू पत्नी को कुछ खर्च कम कराने के बारे में कहते हैं, तो पत्नी के इस उत्तर से वे अचंभित हो जाते हैं कि "सभी खर्च तो वाजिब-वाजिब हैं, किसका पेट काँटू ? यही जोड़-गाँठ करते-करते बूढ़ी हो गई, न मन का पहना, न ओढ़ा।" मानो परिवार की सब परेशानियों के लिए वही जिम्मेदार थे। पत्नी की शिकायत पर गजाधर बाबू कहते हैं- "तुम्हें किस बात की कमी है अमर की माँ- घर में बहू है, लड़के-बच्चे हैं, सिर्फ रूपए से आदमी अमीर नहीं होता।" पर गजाधर बाबू की यह बात उसकी समझ के परे थी। गजाधर बाबू अनुभव करते हैं कि उनकी पत्नी की पति के प्रति कोई संवेदना नहीं रही है। रसोई और चूल्हा-चौका यही उसकी दुनिया है। वह सोचते हैं- "यही थी क्या उनकी पत्नी जिसके हातों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने संपूर्ण जीवन काट दिया था ?" उन्हें लगा की वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गई और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिए नितांत अनजान है। गजाधर बाबू की भावनाओं से पत्नी का अनजानापन उन्हें भीतर से झकझोर देता है।

घर की आर्थिक स्थिति के मद्देनजर गजाधर बाबू कुछ परिवर्तन करते हैं। वे नौकर को हटा देते हैं तथा पत्नी की उमर का लिहाज करते हुए रसोई की जिम्मेदारी बेटी तथा बहू को सौंपते हैं। एक तरीके से वे घर के मालिक बन जाते हैं और घर की छोटी-बड़ी सभी बातों पर ध्यान देने लगते हैं। मगर उनका अच्छे संस्कार हेतु डाँटना और रोक-टोक सबको अखरती है। बेटे, बेटी, बहू, पत्नी किसी को भी घर-गृहस्थी में उनकी दखलंदाजी अच्छी नहीं लगती। घर के मामले में उनके किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप को उनकी पत्नी तथा बच्चे स्वीकार नहीं करते उलटे उनके फैसले का विरोध करने लगते हैं। पत्नी भी बच्चों की रोक-टोक के लिए गजाधर बाबू को मना करती है। एक दिन बेटे अमर की अलग रहने की इच्छा गजाधर बाबू की पत्नी उन्हें बताते हुए कहती है कि "पहले अमर घर का मालिक बनकर रहता था-बहू को कोई रोक-टोक नहीं थी, अमर के दोस्तों का प्रायः यहीं अड्डा जमा रहता था और अंदर से नाश्ता-चाय तैयार होकर जाता रहता था।" गजाधर बाबू बात की गंभीरता को समझते हुए परिवार की भलाई की खातिर दिल पर पत्थर रखकर घर के मुखिया होकर भी मौन धारण करते हैं।

अब वे नरेंद्र को पैसे देते हुए न कारण पूछते हैं, न बसंती को देरी से आने पर टोकते हैं। अब वे घर के किसी भी मामले में दखलंदाजी नहीं करते। पर ऐसा करते हुए कोई भी यह नहीं सोचता कि वे मन-ही-मन कितना भार ढो रहे हैं। यहाँ तक कि उनकी इस घुटन को पत्नी भी महसूस नहीं करती। बच्चों की उपेक्षा का उन्हें उतना बुरा नहीं लगता, जितना पत्नी की बेरूखी का लगता है। वह पाते है कि उनकी पत्नी घी और चीनी के डिब्बों में इतनी रमी हुई है कि वही अब उसकी दुनिया बन गई थी। गजाधर बाबू अब उनके जीवन के केंद्र में नहीं रहे थे। घर में हस्तक्षेप न करने का निश्चय करने पर भी जब वे नौकर को निकाल देते हैं, तब बेटे की कही यह बात उन्हें बहुत अखरती है कि "बूढ़े आदमी हैं, चुपचाप पड़े रहें। हर चीज में दखल क्यों देते हैं!" गजाधार बाबू को अनुभव होता है कि वे परिवार के लिए केवल धनोपार्जन का साधन मात्र हैं। परिवार का कोई भी सदस्य उनसे प्रेम एवं आत्मीयता नहीं रखता है। "गजाधर बाबू ने लौटते समय इस स्थिति की कल्पना नहीं की थी और यह वास्तविकता उन्हें भीतर से सोचने को विवश करती है कि वे जिंदगी से ठगे गए हैं।"[4] जीवन में उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से कुछ भी उन्हें नहीं मिला। रेलवे क्वार्टर का जीवन अब उन्हें खोई हुई निधि-सा प्रतीत होता है।

अपने ही घर में अजनबी बन जाने पर अब वहाँ रहना गजाधर बाबू के आत्मसम्मान के खिलाफ था। घरस्वामी के लिए अपने ही घर में जगह न होना इससे बड़ा दुख क्या होगा? जिंदगी के बचे हुए दिन अपने परिवार के साथ प्यार और आराम से बिताने का जो सपना उन्होंने देखा था अब वह टूट चुका था। इसलिए वापसी ही उस पर एकमात्र उपाय देखकर वे अपनी पत्नी से कहते हैं कि "मुझे सेठ रामजीमल की चीनी-मिल में नौकरी मिल गई है। खाली बैठे रहने से तो चार पैसे घर में आएँ, वही अच्छा है। उन्होंने तो पहले ही कहा था, पर मैंने मना कर दिया था।" जिंदगी के उत्तरार्ध में उन्हें पत्नी के स्नेह एवं प्रेम की आकांक्षा थी। कम-से-कम इतना तो उनका हक बनता था। पर अब तक वे पत्नी के दिल में अपनी अहमियत समझ चुके थे। इसलिए पत्नी साथ नहीं चलेगी यह पता होते हुए भी अपनी भावनाओं को प्रस्तुत करने हेतु वे पत्नी से कहते हैं- "मैंने सोचा था कि बरसों तुम सबसे अलग रहने के बाद, अवकाश पाकर परिवार के साथ रहूँगा। खैर, परसों जाना है। तुम भी चलोगी?" पत्नी के मना करने पर मजबूर होकर अनचाहे मन से वे वापसी का निर्णय लेते हैं। उनके चले जाने के बाद घर का वातावरण फिरसे पहले जैसा बनता है, मानो गजाधर बाबू का आना उनके लिए एक दुखद घटना हो।

गजाधर बाबू की यह कहानी केवल उनके तक सीमित न रहते हुए उन तमाम परिवारों के बूढ़े-बुजुर्गों की कहानी बन जाती है, जो गजाधर बाबू की तरह परिवार की खातिर अपनी इच्छा, अपेक्षा, सपनों का गला घोंटकर अंततः जिंदगी से ठगे गए महसूस करते हैं। गजाधर बाबू का वापसी का निर्णय उनके स्वाभिमान को भले दर्शाता हो, परंतु कई सवाल भी खड़े करता है। जीवन के अंतिम पड़ाव में आकर व्यक्ति की परिवार के साथ रहने की इच्छा क्या गलत है? क्यों बूढ़े माँ-बाप को बच्चे बोझ समझते हैं? अपने बच्चों के अच्छे और बेहतर भविष्य हेतु उन्हें डाँट-फटकार का भी हक माँ-बाप को नहीं? अपने बच्चों से, पारिवारिक सदस्यों से बूढ़े-बुजुर्गों का प्यार, स्नेह की अपेक्षा रखना अनुचित है? क्या बूढ़ों को जीने का अधिकार नहीं है? या वे केवल धनोपार्जन का साधन और आगे बढ़ने की सीढ़ी ही है? आधुनिक जीवन शैली ने समाज व्यवस्था पर ऐसे कई सवालिया निशान खड़े किए हैं, जिनका सही उत्तर न मिलने या न समझने के कारण भारतीय संयुक्त परिवार प्रणाली खतरे पड़ गई है।

आधुनिकता की चाहत में आज व्यक्ति एक ऐसी दौड़ में शामिल है, जिसका कोई अंत नहीं है। इसी कारण तमाम भौतिक सुख-सुविधाओं के होते हुए भी व्यक्ति को न सुख है, न चैन, न आराम, न शांति। बहुत

कुछ पाने की लालच में वह बहुत कुछ खोते जा रहा है। माँ-बाप परिवार की, बच्चों की भलाई की खातिर उनके सुनहरे भविष्य की कामना में स्वयं का जीना भूल जाते हैं और जीवन के अंतिम पड़ाव में आकर जब वे जीवन का हिसाब-किताब करते हैं तो उन्हें महसूस होता है कि जिंदगी ने उनके साथ धोखा किया है। वे स्वयं को जिंदगी से ठगा हुआ मानते हैं। जिन बच्चों की परवरिश में वे पूरी जिंदगी निछावर कर देते हैं, उन्हीं बच्चों के लिए माँ-बाप बोझ लगने लगते हैं। माँ-बाप की कुर्बानी उनकी आँखों से ओझल हो जाती है। आज के इसी सामाजिक यथार्थ की भली-भाँति अभिव्यक्ति 'वापसी' को हिंदी की प्रतिष्ठित और लोकप्रिय तथा कालजयी कहानी बनाती है।

गजाधर बाबू आधुनिक जीवनशैली का एक हिस्सा है, जो आजीविका एवं पारिवारिक भलाई हेतु परिवार से अलग रहने में अभिशप्त है। यह अकेलापन आधुनिक जीवनशैली में न चाहते हुए भी व्यक्ति को परिवार की खातिर स्वीकारना पड़ता है। " 'वापसी' का अकेलापन सारे समाज का भले ही न हो, किंतु वह 'सामाजिक' तो है ही। अकेलापन, जाहिर है कि व्यक्ति को ही महसूस होता है किंतु यह व्याधि तो सामाजिक ही कही जाएगी- उसी प्रकार जैसे असामाजिकता भी सामाजिक व्याधि है।"[5] क्योंकि आज समाज का बहुत बड़ा हिस्सा इससे आहत है। अपनी तमाम जिंदगी दाँव पर लगाकर बदले में अकेलेपन के सिवा अधिक कुछ उन्हें मिलता दिखाई नहीं देता। इसलिए यह कहानी केवल गजाधर बाबू तक सीमित नहीं रहती तो उन तमाम बुजुर्गों की दास्ताँ बयाँ करती है, जो परिवार की सुख-सुविधा हेतु अकेले जीवन काटने में मजबूर है।

रिटायरमेंट के बाद घर जाने की कल्पना से ही गजाधर बाबू आनंदविभोर हो जाते हैं। वैसे संसार की दृष्टि से उनका जीवन सफल कहा जा सकता है, चूँकि उनका शहर में मकान है, बच्चों की पढ़ाई और शादी कर दी है। पर क्या असल में उनका जीवन सफल है? घर में कदम रखते ही उन्हें जीवन की असफलता का आभास होने लगता है। स्वभाव से स्नेही और स्नेह के आकांक्षी गजाधर बाबू अपने घर में 'मनोविनोद' का चाहकर भी हिस्सा नहीं बन पाते। बच्चों से कभी-कभार का रिश्ता उन्हें उनके साथ असहज करा देता है। प्यार के दो मीठे बोल के लिए तरसे गजाधर बाबू से जब भी कोई बात करता तो उसमें शिकायत का ही स्वर रहता था। वैयक्तिक जीवनशैली की बढ़ती प्रचुरता से गजाधर बाबू की सलाह स्वरूप की बातें भी सभी को गलत लगती है, मानों उन्हें उनकी जिंदगी में दखलअंदाजी करने का कोई अधिकार न हो। बेटा, बेटी, बहू यहाँ तक की उनकी पत्नी के व्यवहार में भी अपनापन दिखाई नहीं देता है। सभी गजाधर बाबू के साथ पराए की तरह पेश आते हैं।

कोई भी रिश्ता, संबंध बातचीत से ही दृढ बनता है। अगर संवाद ही न हो तो स्वस्थ संबंध मुश्किल है। इसी का अनुभव गजाधर बाबू को बच्चों के साथ-साथ अपनी बीवी से भी आता है। उनकी पत्नी के लिए रसोईघर ही पूरी दुनिया और आदत बन गई थी और उसके बाहर सोचने के लिए उसके पास वक्त भी नहीं था। अब पति उसकी दुनिया का हिस्सा नहीं रहा था, जिसके कारण गजाधर बाबू के मन में चल रही हलचल को वह समझ नहीं पाती। पूरे परिवार की एक रूटीन लाइफ बन गई थी और गजाधर बाबू के लिए उसमें कोई जगह नहीं थी। एक घरस्वामी को अपने ही घर में जगह ढूँढना और न मिलने पर अजनबी, अकेले महसूस करना वर्तमान समाज व्यवस्था की सबसे बड़ी विडंबना कह सकते है। अपनी वापसी के बारे में गजाधर बाबू के पत्नी से कहे ये उद्गार मन को झकझोर देते हैं कि "मैंने सोचा था कि बरसों तुम सबसे अलग रहने के बाद, अवकाश पाकर परिवार के साथ रहूँगा। खैर परसों जाना है। तुम भी चलोगी?.....ठीक है, तुम यहीं रहो। मैंने तो ऐसे ही कहा था।" गजाधर बाबू की पूरी आंतरिक वेदना इससे स्पष्ट हो जाती है। गजाधर बाबू की इस असहायता को डॉ. नामवर सिंह ने बड़ी मार्मिकता से स्पष्ट करते हुए लिखा है- "वापसी का नायक हर तरह से परिवार में रहना चाहता है किंतु रह नहीं पाता। बड़ी तमन्ना लेकर वह परिवार में वापस आता है किंतु उसे फिर वापस लौटना पड़ता है। नौकरी तो उसके लिए बहाना है। जिस अकेलेपन से वह भागना चाहता है उसी अकेलेपन में वापस आने के लिए वह लाचार होता है। 'जैसे उड़ी जहाज को पंछी फिर जहाज पर आवै।"[6] गजाधर बाबू के चले जाने के बाद उनकी पत्नी के बेटे से कहे ये उद्गार "अरे नरेंद्र, बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।" गजाधर बाबू के अस्तित्व एवं वजूद को बयाँ करते हैं।

निष्कर्ष- आधुनिक समाज व्यवस्था में बूढ़े-बुजूर्ग समाज और परिवार के लिए किसी बोझ से कम नहीं है। मानो जीने का अधिकार केवल युवाओं को ही है। बड़े-बुजूर्गों का त्याग युवाओं के लिए कोई मायने नहीं रखता है। उनके त्याग, समर्पण, सेवा, योगदान को जिम्मेदारी, कर्तव्य का नाम देकर महत्वहीन करके भूला दिया जाता है। जब बड़े-बुजूर्ग अपनी जिम्मेदारी बखूबी निभाते हैं तो युवाओं को भी अपना उत्तरदायित्व समझ में आना चाहिए। उन्हें उनके बुढ़ापे की लाठी बनने में कोई शर्म नहीं महसूस होनी चाहिए। ये तो उनका फर्ज है। अपनी व्यस्तता और कार्यमग्नता का बहाना बनाकर उसे टाला नहीं जा सकता। केवल धन-संपत्ति, नाम, शोहरत से समाधान नहीं ढूँढा जा सकता। जहाँ तक भारतीय समाज व्यवस्था की बात है, पारिवारिक सौहार्द में ही उसकी खुशी निहित है। अगर यह बात समझ में आ गई तो किसी पर गजाधर बाबू की तरह वापसी की नौबत नहीं आएगी। अपने इसी सामाजिक यथार्थ के कारण 'वापसी' कहानी हिंदी कहानी साहित्य में मील का पत्थर बनकर चर्चा में रही। रचना का उद्देश्य केवल कथा कहना या जानकारी देना नहीं होता, तो समाज परिवर्तन की अपेक्षा उसमें अंतर्निहित होती है। गजाधर बाबू की कहानी स्वस्थ समाज हेतु सहायक हो सकती है, बशर्ते उसकी वेदना की समझ पाठक के मन में निर्माण हो।

****

संदर्भ ग्रंथ-

1. डॉ. इंद्रनाथ मदान- हिंदी कहानी (अपनी जबानी), पृष्ठ- 145
2. कमलेश्वर- नई कहानी की भूमिका, पृष्ठ- 91
3. संपादक डॉ. रेखा सेठी, डॉ. रेखा उप्रेती- कालजयी हिंदी कहानियाँ, पृष्ठ- 96
4. वही, पृष्ठ- 97
5. डॉ. नामवर सिंह- कहानी : नई कहानी, पृष्ठ- 162
6. डॉ. नामवर सिंह- कहानी : नई कहानी, पृष्ठ- 159